P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-6* September- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

बौद्ध न्याय में कल्पना की अवधारणा

अनीता नैन
प्रवक्ता,
संस्कृत विभाग,
सेठ बनारसीदास शिक्षण
महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

सारांश

बौद्ध न्याय में प्रमाण मीमांसा के अन्तर्गत प्रायः सभी आचार्यों ने प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण दिया है। प्रत्यक्ष कल्पना ''पोदमभ्रान्तम्'' अर्थात् कल्पना और भ्रान्ति रहित ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रत्यक्ष लक्षण में दो विशेष पद आये हैं ''कल्पनायें एवं अभ्रान्तम्'' जिनमें से कल्पनापोढ़ का अर्थ है–कल्पना से रहित एवं अभ्रान्त का अर्थ है भ्रान्ति रहित। कल्पना के स्वरूप का विस्तृत विवेचन करते हुए बौद्ध न्यायिकों के विविध मत प्राप्त होते हैं वैभाषिक के अनुसार वितर्क विचार इत्यादि से युक्त इन्द्रिय ज्ञान ही कल्पना है योगाचार्य के मद से तथागत् के ज्ञान से भिन्न ग्राह्य–ग्राहक भाव से होने वाले सभी ज्ञान कल्पना है अन्यो के अनुसार नाम जाति आदि से संयुक्त ज्ञान कल्पना है।

मुख्य शब्द : कल्पनापोढ़म्, अभ्रान्तम् इन्द्रिय ज्ञान, वितर्क ग्राह्य–ग्राहक, वैभाषिक, सौत्रान्तिक योगाचार्य।

प्रस्तावना

बौद्धन्याय में प्रमाणमीमांसा का विशद विवेचन प्राप्त होता है। बौद्धनैयायिकों ने प्रमाणमीमांसा से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनमें दिघ्नागकृत प्रमाणसमुच्चय, धर्मकीर्तिकृत न्यायबिन्दु एवं प्रमाणवार्तिक, धर्मोत्तरकृत न्यायबिन्दुटीका एवं शान्तरक्षितकृत तत्त्वसंग्रह आदि प्रमुख उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में प्रमा एवं प्रमाण सम्बन्धी विवेचन विस्तृत एवं तार्किक रूप में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार बौद्धन्याय की प्रमाणमीमांसा का महत्व विलक्षण ही है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य प्रत्यक्ष लक्षण में आये पद ''कल्पना पोढ़'' का विवेचन करना है। कल्पना और भ्रान्तिरहित ज्ञान प्रत्यक्ष है। प्रश्न यह उठता है कि कल्पना क्या है ''कल्पना'' शब्द के सामान्य अर्थ के साथ–साथ विभिन्न दार्शनिकों के मत में कल्पना के स्वरूप पर प्रकाश डालना प्रस्तुत शोध पत्र के मुख्य उद्देश्य है।

साहित्यावलोकन

बौद्ध न्याय के समस्त ग्रन्थों में प्रत्यक्ष प्रमाण के सन्दर्भ में कल्पना की अवधारणा प्राप्त होती है। न्यायदर्शन एवं मीमांसा दर्शन में भी निर्विकल्पक ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण माना गया है। मानमयोदयकार ने भी इन्द्रियसन्निकर्सजन्य ज्ञान को दो प्रकार का माना है निर्विकल्पक एवं सविकल्पक।

वेदान्त दर्शन में भी इसी प्रकार का विवेचन प्राप्त होता है। वाक्य पदीयम् में कहा गया है–,लोक में समग्र व्यवहार शब्द का आशय लेकर चलता है यहॉ तक कि पूर्व जन्म में चित्त में डाले गये भावनात्मक संस्कार से उत्पन्न बालक भी इस जन्म में उसी संस्कार द्वारा इतिकर्त्तव्यता का निर्वाह करता है सांख्यदर्शन एवं योगदर्शन में विपर्यय एवं मिथ्या ज्ञान के रूप में कल्पना का संकेत प्राप्त होता है।

बौद्धन्याय के प्रायः सभी आचार्यों ने प्रत्यक्ष का लक्षण इस प्रकार किया है–'प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्''[1] अर्थात् कल्पना और भ्रान्तिरहित ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रत्यक्ष–लक्षण में दो विशेषण पद आए हैं 'कल्पनापोढ़' एवं 'अभ्रान्त'। जिनमें से कल्पनापोढ़ का अर्थ है–कल्पना से रहित एवं अभ्रान्त का अर्थ है–भ्रान्तिरहित। अब प्रश्न यह उठता है कि यह कल्पना क्या है? इसी कल्पना के स्वरूप का विस्तृत विवेचन बौद्धनैयायिकों ने अपने ग्रन्थों में यथास्थान किया है। किन्तु इससे पहले 'कल्पना' शब्द का सामान्य एवं व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ जानने के साथ–साथ अन्य दर्शनों में प्रतिपादित कल्पना के स्वरूप पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा।

'कल्पना' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ एवं पर्याय

कल्पना शब्द क्लृप धतु से णिच् + युच् + टाप् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है, जिसके विभिन्न अर्थ हैं। यथा–योजना, विचार, क्लृप्ति, विकल्प, उत्प्रेक्षा,

रचना, कोई नई बात सोचना, मानसिक उड़ान, कपटयोजना, जालसाजी, एक वस्तु का दूसरी वस्तु में आरोप, रीति, युक्तिफ, अनुमति अर्थापत्ति आदि।[2]

इस प्रकार कल्पना का सामान्य अर्थ है, जिसके बारे में बुद्धि विचार करके उसमें नाम, जाति, रूप आदि का संयोजन करती है, वह कल्पना कहलाती है।

बौद्धभिन्न दर्शनों में कल्पना का स्वरूप

ऐसा नहीं है कि कल्पना की अवधरणा केवल बौद्धदर्शन में ही मान्य है, अपितु अन्य दर्शनों में भी कल्पना का विवेचन कतिपय भिन्नता के साथ प्राप्त होता है, जिसका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित हैं–

सांख्य एवं योगदर्शन के अनुसार कल्पना

सांख्यदर्शन में यद्यपि कल्पना का नामतः उल्लेख नहीं मिलता किन्तु उसमें विपर्यय एवं मिथ्याज्ञान के रूप में कल्पना का संकेत मिलता है।[3] योगदर्शन में भी कल्पना को विकल्प के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ पर चित्तवृत्तियों की चर्चा करते हुए विकल्प नामक एक चित्तवृत्ति मानी गई है, जिसका लक्षण है–'शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः'[4] अर्थात् जो वृत्तिज्ञान वस्तुशून्य शशविषाणवत् पदार्थ विषयक होने पर भी शब्दजन्यज्ञान के प्रभाव से प्रतीत होता है, वह विकल्पवृत्ति कहा जाता है। इस प्रकार एक मिथ्याज्ञान है, जिसमें वस्तुतः अर्थ की स्थिति नहीं होती, किन्तु शब्दों के प्रभाव से शशविषाण, बन्ध्यापुत्राः, राहोः शिरः इत्यादि प्रयोगों के द्वारा कल्पित वस्तु का ज्ञान कराया जाता है।

वैयाकरण मत में कल्पना

वैयाकरण मत में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में कल्पना की अवधरणा प्राप्त होती है। वाक्यपदीयम् में कहा गया है – लोक में समग्र व्यवहार शब्द का आश्रय लेकर चलता है। यहाँ तक कि पूर्वजन्म में चित्त में डाले गए भावनात्मक संस्कार से सम्पन्न बालक भी इस जन्म में उसी संस्कार द्वारा इतिकर्त्तव्यता का निर्वाह करता है।[5] लोक में प्रसिद्ध अत्यन्त असत् शशविषाण आदि शब्द कल्पित आकार द्वारा दृष्टान्त के रूप में सद्वस्तु के समान व्यवहारजनक होती है।[6]

न्याय–वैशेषिक के अनुसार कल्पना

न्यायदर्शन में भी प्रत्यक्ष के भेदों में सविकल्पक एवं निर्विकल्पक शब्दों में विकल्प अर्थात् कल्पना का ही प्रयोग हुआ है। यहाँ पर प्रथम निर्विकल्पक ज्ञान में केवल वस्तु ही सत्ता या सद्भाव मात्रा की प्रतीति होती है। इसके उपरान्त घटत्व आदि से विशिष्ट घट आदि का ज्ञान जिसमें नाम, जाति आदि विशेषणों की प्रतीति भी सम्मिलित है, सविकल्पक ज्ञान होता है।[7] तर्कभाषाकार ने भी प्रत्यक्ष के भेदों की चर्चा करते हुए इसी प्रकार का विवेचन किया है।[8]

मीमांसा एवं वेदान्त दर्शन के अनुसार कल्पना

मीमांसादर्शन में भी न्यायवैशेषिक के समान कल्पना का स्वरूप प्राप्त होता है। कुमारिल भट्टद्व ने कहा है –''निर्विकल्पक ज्ञान के अनन्तर नाम, जात्यादि से युक्तफ वस्तु जिस सविकल्पक बुद्धि के द्वारा निश्चित होती है, वह सविकल्पक बुद्धि भी लोक में प्रत्यक्ष मानी जाती है।''[9] मानमेयोदयकार ने भी इसी प्रकार का वर्णन करते हुए कहा है कि इन्द्रियसन्निकर्षजन्य ज्ञान दो प्रकार का होता है–निर्विकल्पक एवं सविकल्पक।[10] इनमें इन्द्रियसन्निकर्ष के अनन्तर ही जो द्रव्यादि के स्वरूप मात्रा को विषय करने वाला शब्द सम्बन्ध रहित बालमूकादि–साधरण ज्ञान के समान समुग्धकार ज्ञान उत्पन्न होता है, वह विशिष्ट कल्पनाओं से रहित होने के कारण निर्विकल्पक कहलाता है।[11]

वेदान्तदर्शन में भी इसी प्रकार का विवेचन प्राप्त होता है।[12]

बौद्धन्याय में कल्पना का स्वरूप

बौद्धन्याय में कल्पना का स्पष्ट स्वरूप प्राप्त होता है। किन्तु यहाँ भी कल्पना के विषय में विविध मत हैं, वैभाषिक के अनुसार वितर्क, विचार इत्यादि से युक्तफ इन्द्रियज्ञान ही कल्पना है। योगाचार के मत में तथागत के ज्ञान से भिन्न ग्राह्य–ग्राहक भाव से होने वाले सभी ज्ञान कल्पना हैं। अन्यों के अनुसार नाम, जाति आदि से संसृष्ट ज्ञान कल्पना है।[13]

द्रिनाग के अनुसार कल्पना

बौद्ध में सर्वप्रथम दिघ्नाग ने कल्पना का लक्षणयुक्त स्वरूप प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार कल्पना का लक्षण है–नामजात्यादियोजना कल्पना।[14] अर्थात् नाम ; जाति, गुण, क्रिया आदि से युक्त किसी वस्तु को जानना ही कल्पना है। कल्पना का और अधिक स्पष्टीकरण न्यायप्रवेशसूत्रा के वृत्तिकार ने किया है। उनके अनुसार नाम शब्द जैसे डित्थ, जाति शब्द जैसे–गो, क्रिया–शब्द जैसे पाचक, द्रव्य शब्द जैसे–दण्डी, इन सब प्रकार की कल्पनाओं से रहित स्वलक्षण मात्रा का ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष होता है।[15] यह ज्ञान निर्विकल्पक होता है। इसमें तो वस्तु का स्वरूप मात्र भासित होता है। इसमें केवल 'नील' आदि वस्तु के नेत्रों के सामने उपस्थित होने पर नीलकारक ज्ञान उत्पन्न होता है, वही प्रत्यक्ष है। उसके पृष्ठभावी विकल्प द्वारा यह जाना जाता है कि यह नील का ज्ञान है।[16]

धर्मकीर्ति एवं धर्मोत्तर के अनुसार कल्पना

दिघ्नाग के पश्चात् धर्मकीर्ति ने कल्पना का अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप प्रस्तुत करते हुए कहा है– 'अभिलापसंसर्गयोग्यप्रतिभासाप्रतीतिः कल्पना'[17] अर्थात् वाचक शब्द से संसर्ग के योग्य 'अभिधेय का' आभास जिसमें हो, वह प्रतीति कल्पना कहलाती है। धर्मोत्तर ने भी इसकी विस्तृत व्याख्या करते हुए लिखा है कि कोई प्रतीति तो वाचक शब्द से सम्पृक्त आकार वाली होती है और कोई प्रतीति वाचक शब्द से सम्पक्त नहीं होती। ये दोनों ही प्रतीति कल्पना हैं। प्रथम प्रकार की प्रतीति है, जैसे शब्द और अर्थ के सम्बन्ध 'संकेत' को जानने वाले व्यक्ति को जो घट वस्तु की कल्पना होती है, उसमें घट वस्तु का आकार वाचक शब्द के संसर्ग सहित होता है एवं द्वितीय प्रकार की प्रतीति है, जैसे शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को न जानने वाले शिशु को अपने दूध की प्रतीति होती है, वह भी कल्पना ही होती है।[18] वस्तुतः धर्मकीर्तिकृत कल्पनालक्षण में प्रयुक्त 'अभिलाप' शब्द में नामजातिगुणक्रियादि सभी कल्पनाओं को समाहित कर लिया गया है।[19] इस प्रकार इन कल्पनाओं से रहित जो साक्षात्कारी ज्ञान होता है, वह प्रत्यक्ष कहलाता है।

शान्तरक्षित एवं कमलशील के अनुसार कल्पना विवेचन

शान्तरक्षित ने धर्मकीर्ति का अनुसरण करते हुए कल्पना का लक्षण किया है–

'अभिलापिनी प्रतीति कल्पना.....।'[20] अर्थात् अभिलाप 'वाचक शब्द' से युत्तफ प्रतीति ज्ञान कल्पना कहलाती है। इसकी विशद व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि जो प्रतीति वृक्षादि के रूप में शब्द और अर्थ से संयुक्त होने के योग्य होती है, भले ही उसमें वाणी का प्रयोग न हुआ हो, वह साभिलापा कल्पना कहलाती है।[21]

इसी बात को और अध्कि स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि एक अबोध सद्योजात बालक में भी वह अभिलापिनी प्रतीति सिद्ध हो सकती है क्योंकि पूर्वजन्म के शब्दार्थ अभ्यास से समन्वित वासना, संस्कार वाले उस बालक की प्रतीति अभिलाप शब्द से संसृष्ट न होते हुए भी अभिलापिनी प्रतीति वाली कल्पना ही कहलाती है, जैसे मुस्कान, रोना, स्तनपान, हर्ष आदि लक्षणों में उस बालक की कल्पनापटुता अभिव्यत्तफ होती है।[22] अतः यथोक्त क्रियाप्रदर्शन के द्वारा नवजात शिशु में कल्पना का अनुमान किया जा सकता है। कमलशील ने भी तत्त्वसंग्रह की पञ्जिका में इसी प्रकार का विवेचन किया है।[23]

शान्तरक्षित कल्पना की सिद्धि प्रत्यक्ष–प्रमाण से दिखाते हुए कहते हैं कि चिन्तन और उत्प्रेक्षण काल में जो कल्पना अत्यन्त स्पष्ट जानी जाती है, वह शब्दों से अनुविद्ध ही होती है, उसको छुपाया नहीं जा सकता।[24] तात्पर्य यह है कि मन में विचारित जो भाव होते हैं, वे किसी न किसी माध्यम से शब्दों से या हावभाव से अभिव्यत्तफ हो ही जाते हैं। इस प्रकार कल्पना की सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से होती है। पञ्जिकाकार कमलशील के अनुसार शान्तरक्षित ने अनुमानप्रमाण से भी कल्पना की सिद्धि की है।[25] यथा यदि शब्द और अर्थ के परस्पर सम्बन्ध रूप में जो अध्यवसायात्मक ज्ञान होता है, उसको पूर्ण रूप से भ्रान्त मान लिया जाए तो कल्पना को अस्तित्वहीन मानना पड़ेगा, उस स्थिति में ;कल्पना के असत् होने पर शब्द और अर्थ के रूप में जो व्यावहारिक प्रयोग होता है और घटपटादि के रूप में जो स्वलक्षणरूप बाह्य पदार्थों का अस्तित्व वाच्य रूप में जाना जाता है, उसका भी अयोग सिद्ध हो जाएगा।

निष्कर्ष

इस प्रकार बौद्धन्याय में कल्पना को नामजात्यादि योजना के साथ–साथ अभिलापिनी भी कहा गया है। किन्तु इसका सामान्य अर्थ यही प्रतीत होता है कि कल्पना वह है, जिसमें बुद्धि द्वारा नाम, जाति, रूप आदि का समारोप किया जाए। बौद्धमत में इस प्रकार के ज्ञान को प्रत्यक्ष–प्रमाण की कोटि में नहीं रखा गया है। उनके अनुसार केवल कल्पनारहित 'निर्विकल्पक' ज्ञान ही प्रत्यक्ष–प्रमाण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *न्यायबिन्दु एवं न्यायबिन्दु टीका, 1.4*
2. *तत्त्वसंग्रह, कारिका 1213*
3. *वामन शिवराम आप्टे कोष, पृ. 16*
4. *Sanskrit English Dictionary by S.Moniar Williams, P. 263*
5. *द्रष्टव्य सांख्यतत्त्व कौमुदी, कारिका 47*
6. *पातञ्जिलयोगदर्शनम्,1.6*
7. *द्रष्टव्य वाक्पदीयम् 1.112*
8. *वही।*
9. *द्रष्टव्य, न्यायसूत्र, 14*
10. *तर्कभाषा, पृ. 36–37*
11. *श्लोकवार्तिक, पृ. 152–156*
12. *मानमेयोदय, पृ. 20*
13. *मानमेयोदय, पृ. 20*
14. *द्रष्टव्य वेदान्तपरिमल, पृ. 20*
15. *श्रीनिवासशास्त्रीकृत, न्यायबिन्दु टीका की हिन्दी व्याख्या, पृ. 43*
16. *प्रमाणसमुच्चय, 1.14*
17. *तत्र नाम कल्पना यथा डित्थ आदि। जातिकल्पना यथा गौरिति। आदिशब्देन गुणक्रियाद्रव्यपरिग्रहः। गुणकल्पना शुक्लः इति। क्रियाकल्पना पाचक इति। द्रव्यकल्पना दण्डीति। आभिः कल्पनाभी रहितं शब्दरहितम्। स्वलक्षणहेतुत्वात्। न्यायप्रवेश सूत्रा 34*
18. *द्रष्टव्य, न्यायबिन्दुटीका की हिन्दी व्याख्या, पृ. 44*
19. *न्यायबिन्दु, 1.4*
20. *द्रष्टव्य, न्यायबिन्दुटीका, 14 की व्याख्या, पृ. 42*
21. *वही, पृ. 43*
22. *तत्त्वसंग्रह कारिका 1213*
23. *शब्दार्थघटनायोग्या वृक्ष इत्यादिरूपतः। या वाचां प्रयोगपि साभिलापेव जायते। वही, कारिका 1214 अतीत भवनामार्थ.....कर्त्तव्यतापुटः।। द्रष्टव्य, तत्त्वसंग्रह कारिका 1214*
24. *वही, उपर्युक्त पर पञ्जिका*
25. *चिन्तोत्प्रेक्षादिकाले...न शक्यते।। तत्त्वसंग्रह कारिका 1216*
26. *द्रष्टव्य, तत्त्वसंग्रह कारिका 1218 से पूर्व पञ्जिका*
27. *द्रष्टव्य, तत्त्वसंग्रह कारिका 1217 एवं पञ्जिका*